असामंजस्य के मूल में सामंजस्य

बात वैसी नहीं होती जैसी दिखाई देती है। जब आप किसी वस्तु (उस) के एक सीमित अंश को देखते हैं, तो कुछ अर्थ ही निकलता है, परन्तु उस के पूर्ण स्वरूप पर विचार करें और देखें! एक अर्थपूर्ण छवि उभर कर आती है। इसी प्रकार, समय और अन्तराल के अनन्त चित्र पटल पर सृष्टि की भव्य चित्रकारी फैली हुई है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु और घटना, उस महान चित्रकार की कूची की खींची गई निपूर्ण लकीर है। किन्तु, साधारण व्यक्ति तो केवल इन चित्रणों के केवल भ्रामक छिट-पुट अंश ही देखता है।

जो कुछ भी घट रहा है उसे, उस ईश्वरीय (दिव्य) संगीत निर्देशक के स्वर संगीत की स्वर लहरियाँ ही समझें। अलग-अलग ध्वनि अर्थहीन हैं, जबतक कि वह पूरी संगीत रचना के साथ न सुनी जाए। सृष्टिकर्त्ता की सदा सर्वदा अभिव्यक्ति हो रही इस दिव्य रचना में जीवन, मृत्यु, प्रेम, तूफान सबका अपना-अपना मिला-जुला महत्व है। सभी इस सर्वव्यापी सामंजस्य की लय में एक हो जाते हैं, इसे केवल तभी सुना जा सकता है जब ध्यान में, आत्मा परमात्मा से, समस्वर होती है।

भगवद्‌गीता में 'विश्वरूप दर्शन योग' (अध्याय 11) में श्रीकृष्ण अर्जुन को इस, सभी विविधताओं के बीच में सार्वभौमिक एकता, जो सृष्टि के घटते-बढ़ते सामंजस्य के मूल में स्थित अपरिवर्तनीय सामंजस्य है, से साक्षात्कार करवाते हैं। प्रभु ने कहा, सर्वव्याप्तता के मन्दिर -समस्त ब्रह्माण्ड के देवी देवता, मानव एवं प्रकृति की दिव्य प्रतिमा के रूप में मेरा चिंतन करो।

मनुष्य के ज्ञान का दायरा कितना सीमित है। तुम्हारे पास कान हैं, परन्तु क्या वे वास्तव में सुनते (श्रवण करते) हैं? तुम्हारे पास नेत्र हैं, परन्तु क्या वास्तव में उसकी भावनाएँ एकदम सटीक हैं? तुम्हारे पास आत्मा है, परन्तु क्या तुम्हारी अन्तर्रात्मा उस ईश्वर की सच्ची अभिव्यक्ति है? जो रात्रि के हैं वे अंधेरे में सक्रिय (जीते) हैं, जो दिन के हैं वे प्रकाश में सक्रिय (जीते) हैं। केवल वही जो अपनी अन्तर्रात्माओं में समन्वय का रसास्वादन करते हैं, जानते हैं कि सामंजस्य तो प्रकृति द्वारा ही प्रवाहित हो रहा है। जिनमें इस आन्तरिक सामंजस्य का अभाव है उन्हें जगत में भी इसका अभाव लगता है।

अस्त-व्यस्त मन चारों ओर अस्त-व्यस्तता ही पाता है, कोई व्यक्ति शान्ति के स्वाद को कैसे जान सकता है जब उसने उसे चखा ही न हो। किन्तु, जिसमें आन्तरिक शान्ति है वह बाहरी मतभेद व झगड़ों के होते हुए भी, अपनी शान्त अवस्था को बनाए रखेगा।

भारत में, एक गृहस्थ योगी थे, जिनकी पत्नी क्रोध का अवतार थी, सुकरात की पत्नी से भी कहीं अधिक तुनक मिजाज। योगी की कोई भी बात उसे न तो भाती थी ना ही प्रसन्न करती थी। यहाँ तक कि पड़ोसी भी उसके तेज स्वभाव की शिकायत करते थे। योगी अपनी स्वाभाविक उदारता, एवं अपनी आन्तरिक प्रशान्तता में सुरक्षित (स्थित) होने के कारण, यही सोच कर कि समय ही इसे सुधारेगा, उसे उसके हाल पर छोड़ देते थे। परन्तु पत्नी में उनके लिए तनिक भी धैर्य नहीं था और उसने दृढ़ता से यह ठान लिया था कि वह उनकी आध्यात्मिकता, जिसे वह पूर्णतः अव्यवहारिक समझती थी, नष्ट करके ही रहेगी। अपनी सारी शैतानी युक्तियों में असफल होने पर उसने उनकी समस्त पुस्तकों को जलाकर राख करने के लिए अपने घर को ही अग्नि के सुपुर्द कर दिया। इस पर वे योगी महाराज अपनी पत्नी के निकट आए और कहा, "प्रिय अब तो मैं तुम्हें पहले से भी अधिक प्रेम करता हूँ। तुम तो मेरे लिए ईश्वरीय वरदान हो। अभी तक तो तुम मुझे धैर्य रखना ही सिखाती थी, अब तो तुमने अन्तिम कमज़ोरी, पुस्तकों व घर के प्रति मोह, को भी चंगा कर दिया।" एक सधे हुए शांत सच्चे योगी के मन को क्या या कौन विचलित कर सकता है?

हम इन्द्रधनुषों के पीछे दौड़ते हैं

हम प्रायः अपने निकटस्थ पदार्थों को देखते ही नहीं। हम अपने पास में उपलब्ध समृद्धि को छोड़ देते हैं और इन्द्रधनुषों के पीछे दौड़ते हैं। हम अन्धकार में सुरक्षा ढूँढ़ते हैं, जबकि वास्तव में, हमें प्रकाश की चाहत होती है। हम अनबुझे सुनहरे स्वप्नों के पीछे भागते हैं, जबकि हमारी आत्मा उस परम सत्य के लिए तृषित (प्यासी) है। हम मरीचिका (मृगतृष्णा) के अस्तित्वहीन आश्रय स्थलों के छज्जों को तलाशते हैं, जबकि हमें तलब है मरूउद्यान की शान्ति व सामंजस्य की, जो हमारी अन्तर्रात्मा में निहित है। बाह्य जगत की जो बेमेल विविधताएँ हमें इशारों से आकृष्ट कर रही हैं, वे हमारे अर्न्तमन को सच्चे खज़ानों की छाया-नाटक भाग ही है। बाहर भागते मन की चंचलता से बचो और मन को अन्तर की ओर मोड़ो। अपनी आत्मा में, पहले से ही निहित, सर्वसंतुष्टिदायक सत्यों से अपने विचारों और इच्छाओं में सामंजस्य स्थापित करो, तब तुम अपने जीवन एवं पूरी प्रकृति की आधारभूत समन्वयता को देख पाओगे। यदि तुम अपनी आशाओं एवं अपेक्षाओं का,

इस अन्तर्निहित समन्वयता के साथ, समन्वयन करते हो, तो तुम जिन्दगी के द्वारा शान्ति के उल्लसित पंखों पर तैरोगे (हवा में ऊपर उठोगे)। यह अपरिवर्तनीय शान्ति ही योग का सौन्दर्य एवं गहराई है।

प्रेम व प्रज्ञान (बुद्धिमत्ता) से सामंजस्य उत्पन्न होता है

प्रेम व प्रज्ञान (बुद्धिमत्ता) से सामंजस्य उत्पन्न होता है। ये शुद्ध और विस्तारित होते हुए हृदय की संतान हैं। शुद्ध हृदय बनता है शुद्ध विचारों से। मानसिक शुद्धता एक चयनशील प्रक्रिया द्वारा आती है, जिसमें मन अच्छे विचारों को बुरे विचारों से अलग करता है, बुरे विचारों को त्याग करके सदा अच्छे विचारों के साथ टिक जाता है। बारम्बार दोहरा कर तथा आचरण में लाकर सुदृढ़ करने से विवेचन (विवेक बुद्धि) एक सद्गुणी (निष्कलंक) आदत बन जाती है। गलत सोच को त्याग कर जब विचलित विचारों का मानसिक द्वन्द्व शांत होता है, तब व्यक्ति के अन्तर और बाहरी जीवन में सामंजस्य उत्पन्न होता है। अतः जब परिवार के आपसी झगड़ों में आपके विचार उलझ जाएँ तो बुद्धिमत्ता से उनकी मध्यस्थता करें, और ध्यान से देखें कि अब क्लेशकारी अन्तर्द्वन्द्व आपको परेशान नहीं करते। जो योग का अभ्यास करते हैं यह उनका अनुभव और कथन है।

मन प्रकृति का भस्मक (भस्म करने वाला) है, जिसमें आप सारा मानसिक कूड़ा-करकट, जो संभाल कर रखने योग्य न हो, आपके व्यर्थ के विचार व इच्छाएँ, आपकी भ्रांत धारणाएँ, शिकायतें, व्यथाएँ और मानवीय संबंधों के वैमनस्य, सभी को जलाकर खाक कर सकते हैं।

ऐसा एक भी संबंध नहीं है, चाहे कितनी भी अन-बन (मनमुटाव) क्यों न हो, जिसमें आप मेल-मिलाप न कर सकते हों, बशर्ते पहले आप उसे अपने मन में करें। जीवन में एक भी ऐसी समस्या नहीं है जिसे आप सुलझा नहीं सकते, बशर्ते उसे आप पहले अपने अन्तर्जगत, जो उसका मूल उद्गम स्थल है, में सुलझाएँ। परिणामों से भयभीत न हों चाहे वे कितने भी भयावह क्यों न हों, कार्यवाही करने से पहले अपनी विवेक बुद्धि से मन में स्थिति में सामंजस्य स्थापित कर लें, तब परिणाम स्वयं अपनी देखभाल कर लेंगे। एक सामंजस्यपूर्ण मन विसंगतियों से पूर्ण दिखने वाले इस विश्व में सामंजस्य लाता है।